सदैव प्रसन्न रहना
ईश्वर की
सर्वोपरि भक्ति है ।
ऋषि प्रसाद
द्विमासिक
वर्ष : १ अंक : ४
जनवरी-फरवरी १९९२

ऋषि प्रसाद

सदैव प्रसन्न रहना ईश्वर की सर्वोपरि भक्ति है।

वर्ष : १

अंक : ४

जनवरी - फरवरी १९९२

तंत्री : के. आर. पटेल

शुल्क वार्षिक : रु. २२

त्रिवार्षिक : रु. ६०

विदेश में वार्षिक : US $ २२ (डालर)

त्रिवार्षिक : US $ ६० (डालर)

* कार्यालय *

'ऋषि प्रसाद'

श्री योग वेदान्त सेवा समिति

संत श्री आसारामजी आश्रम

साबरमती, अहमदाबाद-३८० ००५.

फोन : ४८६३१०, ४८६७०२

विदेश में शुल्क भरने का पता :

International Yog Vedanta Seva Samiti
8 Willams Crest,
Park Ridge, N.J. 07656 U.S.A.
Phone : (201) - 930 - 9195

टाईपसेटींग : फोटोटेक्स्ट, अहमदाबाद।

प्रकाशक तथा मुद्रक : श्री के. आर. पटेल, श्री योग वेदान्त सेवा समिति, संत श्री आसारामजी आश्रम, साबरमती, मोटेरा, अहमदाबाद-३८० ००५ ने अंकुर ऑफसेट, गोमतीपुर, अहमदाबाद में छापकर प्रकाशित किया।

अनुक्रम

'ऋषि प्रसाद' हर दूसरे महीने ९ वीं दिनांक को प्रकाशित होता है।

आहार निद्रा भय मैथुनं च।
सामान्यमेतद् पशुभिर्नराणाम्॥

आहार, निद्रा, भय और मैथुन... ये चारों बातें मनुष्य और पशु दोनों में समान रीति से हैं। पशु में चेतन की तीन कलाएँ विकसित हुई हैं; इसलिए वह शीत-उष्ण, हानि-लाभ आदि के बारे में सुख और दुःख का अनुभव करता है। पशु में मान-अपमान की अनुभूति की गहरी चोट नहीं होती। पशु को मरने के बाद एवं जीते जी मुक्ति पाने की कला भी ज्ञात नहीं।

मनुष्य पशु से अधिक बौद्धिक विकास कर चुका है। खान-पान से लेकर जीने मरने तक की सब क्रियाएँ पशु की तरह ही नहीं वरन् पशु से कई गुना अधिक बौद्धिक ढंग से करता है। इतना होने के बावजूद भी मनुष्य में एक ऐसी सूक्ष्म विचार की प्रणाली है कि वह सोच सकता है कि यह दुन्यावी सुख-सुविधा के साधन और दुःख-विडंबनाओं से ऊपर उठकर शाश्वत और अनुपम आत्म-शान्ति को कैसे हांसिल कर लूं।... और यही चाह मनुष्य को विकारी सुख से ऊपर उठाती है, सम्बन्धों से पिण्ड छुड़वाती है, बदलनेवाली परिस्थितियों में अपना आग्रह छुड़वाती है।

मनुष्य में चेतन की चार कलाएँ स्वाभाविक ही विकसित हुई हैं। अगर वह पाँचवीं, छट्ठी और सातवीं कला का विकास कर ले तो जो मनुष्य सुख के लिए दर दर की ठोकरें खाता है, वस्तु, व्यक्ति और परिस्थितियों के आगे नाक रगड़ता है वही मनुष्य स्वयं तो शाश्वत सुख पा लेता है, दूसरों को भी सुख देनेवाला दाता बन सकता है।

मनुष्य को भगवान ने अपनी शक्ल-सूरत से मिलता-जुलता बनाया है। मनुष्य को भगवान की तरह हाथ, पाँव, मुँह, नाक, कान आदि अंग हैं और उनका उपयोग भी भगवान की तरह कर सकता है। इस प्रकार शारीरिक साम्य पाने के बाद अब परमात्मा से बौद्धिक एवं मानसिक एकता करना ही मनुष्य जीवन का लक्ष्य है।

मनुष्य को अपनी बुद्धि परमात्मा के साथ मिलाना चाहिए, परमात्मा की दृष्टि से अपनी दृष्टि मिलाना चाहिए और इसका दिग्दर्शन मिलता है सत्संग में। सत्संग ऐसा साधन है जिससे मनुष्य दुःख को मिटा सकता है, हताशा, निराशा को भगा सकता है, पापों का नाश कर सकता है और इसी जीवन में परिस्थितियों से ऊपर उठकर अमर आत्मा का अनुभव कर सकता है।

'ऋषि प्रसाद' का प्रकाशन आपको घर बैठे सत्संग पहुँचाने की व्यवस्था है। इसमें आपको भोजन कैसे करना, भजन कैसे करना, मुक्ति कैसे पाना... इसकी युक्तियाँ पूज्यपाद गुरुदेव के सत्संग की अमृतवाणी से संकलित करके दी जाती हैं।

इस अंक में 'अनन्यचेताः सततं...' गीता-श्लोक पर सत्संग-प्रवचन, अंबालाल पटेल की साधना, 'नारी ! तू नारायणी' विभाग में कर्मावती की दृढ़ भक्ति, भोजन में सावधानी, विद्यार्थी बालक-बालिका के ध्यान योग शिविर के अनुभव... अपने जीवन में परिवर्तन का अनुभव और अन्य भी रसिक, ज्ञान-विज्ञानप्रद सर्वोपयोगी लेख आपके हित की भावना से आपकी सेवा में प्रस्तुत हैं।

जैन धर्म में अहिंसा की प्रधानता है, बौद्ध धर्म में करुणा की प्रधानता है, ईसाई धर्म में सेवा की प्रधानता है एवं मुस्लिम धर्म में विश्वास की प्रधानता है... परन्तु हमारे सनातन धर्म में अहिंसा, करुणा, सेवा, विश्वास (श्रद्धा) तो है ही, पर सबके हित की प्रधानता भी है। प्रत्येक हिन्दू यही सोचता है कि दूसरों का हित कैसे हो... सबको सुख और शान्ति कैसे प्राप्त हो...

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चित् दुःखमाप्नुयात्॥

*

इतएत उदारुहन, दिवः पृष्ठान्यारुहन्।
प्र भूर्जयो यथा पथो, द्यामंगिरसो ययुः॥

'ये तपस्वी, प्राणायाम-परायण यहाँ से ऊर्ध्वारोहण करके द्युलोक के स्तरों पर चढ़कर अन्त में द्युलोक में पहुँच गये हैं। जिस तरह पृथ्वी-जयकर्ता मार्गों पर जय करते करते आगे बढ़ते हैं वैसे।' [सामवेद : ९२]

समस्त ब्रह्माण्ड का संचालक बल प्राण है।

समष्टि और व्यष्टि का प्रेरक बल प्राण है। जिसने प्राण को वश में किया उसने विश्व पर आधिपत्य जमा लिया है। श्री काकभुशुंडजी ने प्राण-अपान की गति को सम करके चिरायु भोगी है और कल्पान्त में भी विश्व की सृष्टि, स्थिति और प्रलय के साक्षी रहे हैं। १२ रामावतार और कृष्णावतार के साक्षी रहे हैं। यह प्राणजय की परम सूक्ष्म अवस्था के बल पर ही।

तपस्वी, प्राणायाम के अभ्यासी योगियों ने ऊर्ध्वयात्रा शुरु की है। योगी पृथ्वीलोक से ऊपर उठकर अंतरिक्ष लोक के विविध स्तर पार कर अंत में द्युलोक में पहुँचकर वहीं निवास कर रहे हैं। यथा पिण्डे तथा ब्रह्माण्डे। यह पृथ्वी, अंतरिक्ष और द्युलोक अपने शरीर में ही हैं। पाँव के तले से कटि प्रदेश तक पृथ्वीलोक है। कटि प्रदेश से गले तक का प्रदेश अंतरिक्ष लोक है और गले से ऊपर मस्तक तक द्युलोक है।

अपने शरीर में इन तीनों लोकों के कुल मिलाकर आठ चक्र आये हुए हैं। रीढ़ की हड्डी के अंतिम मणके के नीचे सुषुम्ना नाड़ी के स्थान में मूलाधार चक्र है। लिंग के पास स्वाधिष्ठान चक्र है, नाभि में मणिपुर चक्र है। हृदय में अनाहत चक्र है, कंठकूप प्रदेश में विशुद्धाख्य चक्र है, तालु में ललित चक्र है, भ्रूमध्य में आज्ञाचक्र है तथा मस्तक की चोटी पर सहस्रार चक्र है। प्राणों का संक्रमण इन स्थानों में होने से इसे चक्र कहा जाता है। स्थूल आँखों से ये चक्र नहीं देखे जा सकते किन्तु प्राणायाम की साधना द्वारा उनका अनुभव हो सकता है।

साधारण मनुष्यों के प्राण नीचे के चक्रों में ही रहते हैं इससे उनके मन में वैषयिक सुख की कामना ही विशेष रहती है। परन्तु तपस्वी, योगीजन प्राणायाम के अभ्यास से प्राणों को सूक्ष्म करके ऊपर के चक्रों में ले जाते हैं, इसीसे उनका मन विषयभोग से विरक्त रहता है।

मूलाधार और स्वाधिष्ठान ये दोनों चक्र पृथ्वीलोक के स्थान हैं। मणिपुर, अनाहत और विशुद्धाख्य ये अंतरिक्षलोक के स्थान हैं और ललित,

आज्ञा तथा सहस्रार ये द्युलोक के स्थान हैं।

प्राणों का ऊर्ध्वारोहण करते करते योगीजन सभी चक्रों का भेदन करके अंत में सहस्रार में स्थित होते हैं। वहाँ स्थित योगी देवताओं से पूजे जाते हैं, सिद्धों का संग कर सकते हैं, उनकी बुद्धि ऋतंभरा प्रज्ञा बनती है, दिव्य ज्योति के दर्शन होते हैं और निर्विकल्प समाधिलाभ होता है।

जैसे पृथ्वी पर विजय प्राप्त करनेवाला राजा मार्गों राजमार्गों पर विजय प्राप्त करते करते आगे बढ़ता है और संपूर्ण पृथ्वी को जीतकर अपना सार्वभौम राज्य स्थापित करता है उसी तरह योगीजन ऊर्ध्वरेता बनकर ऊर्ध्वगति करते करते द्युलोक के सर्वोच्च स्थान सहस्रारचक्र में स्थिति करते हैं और आध्यात्मिक प्रगति की सर्वोच्च ऊँचाई पर पहुँचते हैं कि वहाँ से पुनः वापस नहीं आना पड़ता। पुनर्जन्म और मृत्यु के भीषण ताप में उन्हें तपना नहीं पड़ता।

*

'मैं आत्मा हूँ... शरीर नहीं हूँ...' रात दिन ऐसा अभ्यास करके आत्मानन्द का अनुभव करना चाहिए। यही मनुष्य जीवन का पुरुषार्थ है। फिर भी आश्चर्य की बात है कि जो देहादिक विषय भाग्य पर छोड़ देना चाहिए उनके लिए मनुष्य चिन्ता किया करता है और जिनके लिए पुरुषार्थ करना अत्यन्त आवश्यक है उन बातों को मनुष्य भाग्य पर छोड़ देता है। पुरुषार्थ को आत्मा की ओर लगाओ तथा शारीरिक एवं मानसिक चिन्ताएं व उपाधियाँ भाग्य को सौंप दो।

आपके ब्रह्मत्व के बारे में आपको सन्देह है क्या? इस विषय में हृदय में सन्देह को स्थान देने के बजाय बन्दूक की गोली को स्थान देना अच्छा है। आपका अन्तःकरण आपको धोखा दे रहा है। उसको खींच निकालो और फैंक दो। उल्लसित हृदय से सत्य के सागर में प्रवेश करो। डरते क्यों हो? आपकी दिव्यात्मा तो सर्वशक्तिमान है। वह जब प्रकाशित होने लगेगी तब सर्व परिस्थितियाँ अपने आप अपना कार्य करने लगेंगी और सर्व वस्तुएँ आनन्दित एवं सुव्यवस्थित हो जाएँगी।

– स्वामी रामतीर्थ

गुरु-शास्त्रादि के द्वारा आत्मा की सत्यता का बोध होते ही मन जब संकल्प करने की आदत छोड़ देता है तब वह अमनीभाव में आ जाता है। उसका मनपना मिट जाता है। कुछ भी ग्रहण करने का न होने से वह अग्रह (ग्रहणभाव रहित) हो जाता है।

– मांडूक्य उपनिषद

जब तक सुख-दुःख का अनुभव होता है तब तक प्रारब्ध को मानना पड़ता है। क्योंकि किसी भी फल की प्राप्ति पूर्व के कर्म के कारण से ही होती है। कर्म के बिना कोई फल उपजता नहीं है।

– विवेकचूड़ामणि

गीता - अमृत

पूज्यपाद संत श्री आसारामजी महाराज

अनन्यचेताः सततं यो मां स्मरति नित्यशः।
तस्याहं सुलभः पार्थ नित्ययुक्तस्य योगिनः॥

'हे अर्जुन ! जो पुरुष मुझमें अनन्यचित्त होकर सदा ही निरन्तर मुझ पुरुषोत्तम को स्मरण करता है, इस नित्य-निरन्तर मुझमें युक्त हुए योगी के लिये मैं सुलभ हूँ, अर्थात् उसे सहज ही प्राप्त हो जाता हूँ।'

(भगवद्‌गीता : ८.१४)

अनन्यचेता वह है, जो अपने चित्त को अनन्यभाव से परमात्मा में लगाता है, नित्य उसीका स्मरण करता है। नित्य स्मरण का मतलब यह नहीं कि आँखें मूँदकर सारा दिन 'कृष्ण... कृष्ण... ' करता रहे। आदमी जो कुछ करता है उसे करने की शक्ति उस चैतन्य स्वरूप से आती है। जैसे, पंखा बिजली से चलता है। तो जो आदमी बिजली का ज्ञान रखता है, अलग अलग साधन देखते हुए भी उसे स्मरण रहता है कि काम उसी विद्युत का है। अन्य अन्य में दिखनेवाली लाईट अनन्य है। जैसे पौधे अलग अलग हैं लेकिन खेत में पानी तो एक ही है। पौधे अलग अलग हैं। कोई नींबू का, कोई गुलाब का, कोई सूर्यमूखी का तो कोई मोगरे का पौधा है लेकिन सूर्य के किरण तो सबको एक ही मिलते हैं।

कबीरा कुंआ एक है, पनिहारी अनेक।
न्यारे न्यारे बर्तनों में, पानी एक का एक॥

सब घट मेरा साँईया, खाली घट ना कोय।
बलिहारी वा घट की जा घट प्रकट होई॥

सब घटों में वही परमात्मा है जिसकी सत्ता से हृदय धबक रहा है, जिसकी शक्ति से आँखें देख रही हैं, जिसकी शक्ति से कान सुन रहे हैं, मन विचार कर रहा है, बुद्धि निर्णय ले रही है। वह शक्ति तो मेरे चैतन्य राम की है ऐसा जिसको स्मरण है वह अनन्यचेता है।

शत्रु के द्वारा कभी अपमान हो जाता है तो समझदार समझता है कि भगवान ने शत्रु को प्रेरित करके मेरा अपमान करवाया ताकि अभिमान मिट जाय। मित्र के द्वारा प्रेम, सम्मान मिलता है तब कहता है : 'वाह प्रभु ! मित्र के द्वारा सम्मान, प्रेम दिलाकर तू मेरा उत्साह बढ़ा रहा है...' ऐसा विचार करनेवाला अपमान और सम्मान के समय सुमिरन उसीका करता है। जब सुमिरन उसीका करता है तो अपमान आकर चला जाता है, सम्मान आकर चला जाता है। भक्त का मन भगवान में रह जाता है। इसलिए उसके लिए भगवान सुलभ हो जाते हैं।

'तू मेरा है और मैं तेरा हूँ।' इतना ही तो करना है। कोई बोझा थोड़े ही उठाना है !

सतत सुमिरन करो कि वह परमात्मा तुम्हारा है और तुम उसके हो। न खेत तुम्हारा है, न कपड़े तुम्हारे हैं, न मकान तुम्हारा है और न पुत्र-पत्नी तुम्हारे हैं। जिसका सब कुछ है वह यार तुम्हारा है और तुम उसके हो। ऐसा सतत सुमिरन रहे तो तुम नित्य मुक्त हो जाओगे। भगवान कहते हैं : ऐसे अनन्य चित्तवाले के लिए मैं

सुलभ हो जाता हूँ।

संसार को पाना कठिन है। भगवान को पाना कठिन नहीं है। संसार का कितना भी लिया, रखा; मगर वह स्थायी कहाँ रहता है? बचपन अभी रहा क्या? बचपन के खिलौने रहे? बचपन का मीठा, निर्दोष चेहरा रहा? नहीं, बदल गया। मगर बचपन में जो भगवान साथ में था वह तो अभी भी है। जो सदा है उसको पाना कठिन नहीं। मगर उसका स्मरण सतत नहीं होता। उसका ज्ञान नहीं मिलता। गुरु नहीं मिलते इसलिए मनमुख हो जाते हैं। किसीकी निंदा सुनते हैं, किसीकी स्तुति सुनते हैं और संसार की बातें दिन-रात मस्तिष्क में घूमती हैं। इसलिए भगवान को पाना कठिन हो गया है। वास्तव में भगवान को पाना कठिन नहीं है। संसार को पाना कठिन है। यदि वह मिल गया तो टिकना कठिन है। जबकि भगवान एक बार मिल गया तो मिटता नहीं, हटता नहीं। संसार की चीजें कितनी भी मिलेंगी, वे टिकेंगी नहीं। चाहे लाखों, करोड़ों, अरबों रूपये मिल जायँ फिर भी यहाँ छोड़कर मरना होगा, साथमें नहीं चलेगा।

जिसकी सत्ता से हृदय धबक रहा है, जिसकी शक्ति से आँखें देख रही हैं, जिसकी शक्ति से कान सुन रहे हैं, मन विचार कर रहा है, बुद्धि निर्णय ले रही है वह शक्ति तो मेरे चैतन्य राम की है। ऐसा जिसको स्मरण है वह अनन्य चेता है।

भगवान एक बार मिल जाय तो? अरे, अभी मिला हुआ तो है मगर दर्शन नहीं हुआ। एक बार दर्शन हो जाय तो फिर कभी अदर्शन नहीं होता। संसार की चीजें एक बार नहीं दस बार मिल जायँ, फिर भी छूट जाती हैं।

दिवाली के एक दिन पहले करोड़ों रुपये की मिठाइयाँ भारत में बनती हैं। अगरबत्तियाँ होती हैं हलवाई की दुकान पर, और दिवाली के दूसरे दिन वे मिठाइयाँ कहाँ रहती हैं? राम... राम... राम...। बात मत करो... तोबा... तोबा...। संसार की चीजें टिकती नहीं। था तो बढ़िया दूध। पिया, चार घंटे के बाद देखो तो पसीना हो गया या फिर पेशाब हो गया। पृथ्वी का अमृत माना गया है; उसकी यह हालत! थी तो मिठाइयाँ। हलवाई की दुकान पर अगरबत्तियाँ हो रही थीं, दिवाली की रात घर पर लाये और दूसरे दिन देखो तो कहाँ पहुँच गयीं? संडास में।

संसार की चीजें टिकती नहीं।

कह रहा है आसमां यह शमां भी कुछ नहीं।
रो रही हैं शबनमें ये निज़ारे कुछ नहीं॥
जिनके महलों में हज़ारों रंग के जलते थे फानूस।
झाड़ उनकी कब्र पे हैं और निशां कुछ भी नहीं॥
जिनकी नौबतों से गूंजते थे सदा को आसमां।
वे खुद बेदम हैं अब हूँ न हाँ कुछ भी नहीं॥

माया - छाया दो दिन की है। परमात्मा सदा रहता है। उसका उपजाया हुआ सूर्य अभी भी रोज उदय हो रहा है। उसकी किरणें पाकर कई वनस्पतियाँ बनीं, मिट गईं। मगर जिससे देखा जाता है वह नहीं गया। यह शरीर भी चला जाता है फिर भी वह परमात्मा नहीं जाता है। ऐसा जिसको ज्ञान और स्मरण है उसके लिए भगवान को पाना सरल है।

तस्याहं सुलभः पार्थ नित्ययुक्तस्य योगिनः।

'वे योगी नित्य युक्त हैं, वे योग करते हैं अर्थात् विचारों से मेरा चिन्तन और मनन करते हैं।'

सतत सुमिरन करो कि वह परमात्मा तुम्हारा है और तुम उसके हो। ऐसा सतत सुमिरन रहे तो तुम नित्य मुक्त हो जाओगे। भगवान कहते हैं : ऐसे अनन्य चित्तवाले के लिए मैं सुलभ हो जाता हूँ।

हम लोग संसार का चिंतन बहुत करते हैं इसलिए भगवान पराया लगता है। जैसा चिन्तन करते हैं, वैसे हम बन जाते हैं।

मेहसाना जिले के

किसी गाँव में अंबालाल पटेल नामका एक लड़का था। उसकी माँ बचपन में मर गयी थी। बाप ने दूसरी शादी की। अब सौतेली माँ उसे खूब सताती। जब अंबालाल सत्रह-अठारह साल का हुआ तो उसे अपनी समझ आने लगी। अपमान उससे सहन नहीं होता।

हम लोग संसार का चिंतन बहुत करते हैं इसलिए भगवान पराया लगता है। जैसा चिन्तन करते हैं, वैसे हम बन जाते हैं।

उमरलायक लड़के-लड़की को ज्यादा रोक-टोक करने से उनका दिमाग खराब हो जाता है। बालक छोटा है तो उसे प्यार करो। बड़ा हुआ, दस-बारह सालका, पंद्रह साल का किशोर हुआ तो उसे सीख दो। अनुशासन में रखो। जब अठारह-बीस साल का हो तब उससे मित्र जैसा, भागीदार जैसा व्यवहार करना चाहिए। फिर डंडे से काम नहीं लेना चाहिए। मगर सौतेली माँ क्या जाने? वह तो धमकाती कि : 'मुफ्त का क्यों खा रहा है? मुँआ, मर जा। वह तेरी माँ गई और तू इधर क्यों पड़ा रहा है? जा, तुझे वह बुला रही है।' ऐसा उसे बोलती तों अंबालाल से सहा नहीं जाता था।

एक दिन वह घर से निकल ही पड़ा। मेहसाना स्टेशन पर आया। वहाँ मि. थोल्स नाम के एक स्टेशन मास्टर थे, उनसे आकर मिला। उनके आगे थोड़ा रोया, अपनी आपबीती सुनाई और बोला : "मुझे कुछ काम दे दीजिए।"

स्टेशन मास्टर ने लड़के को छोटा-मोटा काम दे दिया। फिर धीरे-धीरे उस लड़के ने सीखते-सीखते अजमेर में तारबाबू की परीक्षा दी और पास हो गया। वह तारबाबू बन गया। उसको सिद्धपुर में नौकरी मिली।

सिद्धपुर में सरस्वती नदी बहती है। उस समय उसमें पानी खूब रहता था।

अंबालाल सीधा-सादा जीवन जीता था। नौकरी से छुट्टी पाने के बाद थोड़ा-सा दैनिक कार्य करता और फिर कहीं साधु-संतों का नाम सुनता तो वहाँ दर्शन करने पहुँच जाता। कोई नंगा, भूखा हो तो उसको सहाय करता। बाकी का समय और पैसा कोई भक्ति, ज्ञान का प्रचार करनेवाले साधु-संत की सेवा में लगाता। अपने लिए बहुत कम खर्च करता। सीधा-सादा बिस्तर, कपड़े, और भोजन। बाकी का सब सत्कर्म में खर्च कर देता।

जो आदमी अपनी आवश्यकता कम रखकर अपनी बाकी आय का सदुपयोग करता है उसका हृदय जल्दी सत्पद में टिक जाता है।

अंबालाल ने सोचा कि आठ घण्टे तो यह पेट की पूजा के लिए नौकरी करना पड़ता है। यह हाड़ मांस के शरीर को जिलाने के लिए आठ घण्टे, तो आत्मा-परमात्मा को जगाने के लिए भी तो आठ घण्टे होना चाहिए। आठ घण्टे नौकरी; छः घण्टे नींद। हो गये चौदह घण्टे। बाकी दस घण्टे बचे। उसने निर्णय किया कि उसमें से आठ घण्टे तो प्रभु के लिए अवश्य लगाना चाहिए। ऐसा नियम बनाया कि आठ घण्टे तो नौकरी में जायें और आठ घण्टे भक्ति में लगे।

उस समय महीने-महीने बदली हो जाती थी। कभी पंद्रह दिन में पाली (डयूटी) बदल जाती थी, तो वह भजन का समय भी बदल देता। लेकिन आठ के बजाय पौने आठ घण्टे नहीं होने देता। मन लगे चाहे न लगे मगर भगवान के लिए बैठना है। आफिस में मन लगता हो चाहे नहीं लगता हो फिर भी सरकार वेतन देती है तो वह दैवी सरकार कोई दिवालिया थोड़े ही है?

तुलसी अपने राम को
रीझ भजो या खीझ।
भूमि फैंके उगेंगे ही
उलटे सीधे बीज॥

सरस्वती के बीच में कोई टापू बन गया था। अंबालाल कमर तक के

उमरलायक लड़के-लड़की को ज्यादा रोक-टोक करने से उनका दिमाग खराब हो जाता है। बालक छोटा है तो उसे प्यार करो। बड़ा हुआ, दस-बारह साल का, पंद्रह साल का किशोर हुआ तो उसे सीख दो, अनुशासन में रखो।

पानी को लाँघकर, नहा धोकर फिर उस टापू में बैठ जाता।

एक दिन शाम को वह उस टापू में बैठा था। एक बूढ़ा ब्राह्मण वहाँ आया और बोला :

जो आदमी अपनी आवश्यकता कम रखकर अपनी बाकी आय का सदुपयोग करता है उसका हृदय जल्दी सत्पद में टिक जाता है।

"अरे ! तुझे अपना प्राण प्यारा नहीं है ? रात गहरी होने जा रही है। इधर मरने को बैठा है ? इतना गहरा पानी और उधर की ओर जंगल... !"

अंबालाल : "मुझे मरने का भय नहीं। कोई हिंसक पशु आ जायेगा, पानी में से मगर या कोई और आकर खा जायेगा तो उसकी भूख समाप्त होगी। ... और एक न एक दिन मरना तो मुझे है ही।"

बूढ़ा ब्राह्मण चिढ़ गया और बोला :

"अपनी अक्ल नहीं और दूसरे की मानता नहीं। मरने के लिए जन्म मिला है ? अमर होने के लिए आया है कि मरने के लिए आया है ? मनुष्य जन्म बड़ी मुश्किल से मिलता है यह तुझे खबर नहीं है क्या ? घोड़ा बना, गधा बना, बिल्ली बना, चूहा बना, भैंसा बना, गाय बना, न जाने क्या क्या बना। डंडे खाये। उसके बाद तो मनुष्य जन्म मिला। और उसे तू ऐसे ही बरबाद करने को आया है ? मनुष्य तन मिला है बड़ा कीमती, मुक्त होने के लिए मिला है। बोल, क्या चाहता है ?"

अंबालाल को हुआ कि यह ब्राह्मण कोई संत आदमी लगता है। वह बोला :

"ब्राह्मण देव ! माफ करना। मैंने आपके वचनों की अवज्ञा की। मैं तो समझा की नश्वर शरीर है, किसीके काम आ जाय तो आ जाय।"

ब्राह्मण : "शरीर नश्वर है। मगर खा जाय उससे पहले शरीर की ममता हट जाय, भगवत्प्राप्ति हो जाय वह काम करना चाहिए न ?"

ब्राह्मण की आवाज में प्रेम प्रकट हो रहा था।

"आप दया करो, आशीर्वाद दो।" अंबालाल झुक गया।

"क्या चाहता है ?"

"मैं तो मेरे गिरिधर गोपाल का दर्शन करना चाहता हूँ। मेरे रणछोड़राय के दीदार करना चाहता हूँ।"

"रणछोड़राय तो डाकोर में हैं।"

"डाकोर में तो ठाकोरजी की मूर्ति है। मोरमुकुट, पीतांबरधारी चाहें तो शंख, चक्र, गदा, पद्म धारण करके प्रकट हो जायँ। उन अंतर्यामी, सर्वेश्वर श्री आदिनारायण का मैं दर्शन करना चाहता हूँ। नर-नारी सबमें जो बिराजमान हैं उन नारायण का मैं दर्शन करना चाहता हूँ।"

ब्राह्मणदेव : "वह नारायण तो सबमें बिराज रहा है यह समझ ले। चींटी में छोटा लगे, हाथी में बड़ा लगे, महावत बनकर भी वही बैठा है ऐसा समझ ले। ज्ञान पा ले, बस !"

अंबालाल : "ज्ञान तो पा लूं, मगर मुझे तो साकार नारायण का दर्शन करना है। मैं तो गिरिधर गोपाल, रणछोड़राय के दर्शन करना चाहता हूँ।"

अब अंबालाल बड़े आदर से ब्राह्मण को प्रणाम करता है। सूर्य तो कब का ढल ही चुका था। चंद्रमा अपनी शीतल चाँदनी छिड़क रहा था। इतने में उस बूढ़े ब्राह्मण ने अपना असली रूप प्रकट किया। शंख, गदा, पद्म और सुदर्शनचक्रधारी नारायण प्रकट हो गये।

नारायण का दर्शन करके अंबालाल भावमग्न हो गया। प्रणिपात करके एड़ी से चोटी तक के परमात्मा के रूप-माधुर्य को अपनी प्रेम-विह्वल आँखों से पीता हुआ परमात्मा की आज्ञा की अपेक्षा से खड़ा रह गया।

"जा बैटा ! अपना कर्त्तव्य पालन कर। काम में, डयूटी में चोरी नहीं करना।

मन लगे चाहे न लगे मगर भगवान के लिए बैठना है। आफिस में मन लगता हो चाहे नहीं लगता हो फिर भी सरकार वेतन देती है तो वह दैवी सरकार कोई दिवालिया थोड़े ही है ?

काम तत्परता से करना मगर करने का भाव अपने अंदर मत रखना। करने-कराने वाला मैं आदिनारायण सबके हृदय में बस रहा हूँ। यह जो दिख रहा है वह सब माया है। जिससे दिख रहा है वह नारायण है। जो नारायण है वह तू है, जो तू है वह मैं हूँ। जा, अब अपने काम में लग जाना।"

सूर्य तो कब का ढल ही चुका था। चंद्रमा अपनी शीतल चाँदनी छिड़क रहा था। इतने में उस बूढ़े ब्राह्मण ने अपना असली रूप प्रकट किया। शंख, गदा, पद्म और सुदर्शनचक्रधारी नारायण प्रकट हो गये।

अंबालाल गद्गद् होकर भावसमाधि में आ गया। चंद्रमा की चाँदनी बढ़ रही थी। रात्रि के ग्यारह बजे अंबालाल उठा। स्मरण हो आया कि सुबह जल्दी उठना है। डयूटी पर भी जाना है। अपनी अलौकिक मस्ती में घर पहुँचा। सुबह में थोड़ा नारायण का स्मरण किया और भावसमाधि लग गई। आठ बजे डयूटी पर जाना था उसकी जगह साढ़े दस बज गये। आफिस में गया।

पोस्ट मास्टर ने कहा : "अरे अंबालाल! पटेल तो पटेल ही रहा, बैल की पूँछ मरोड़नेवाला। तारबाबू हुआ फिर भी तुझे अक्ल नहीं? लापरवाह! बेपरवाह!" उसे सस्पेन्ड कर दिया।

इधर अंबालाल के दिल में दुःख नहीं हुआ। 'जो कुछ करता है मेरा नारायण ही करता है।' वह घर गया। दो-चार दिन घर में ही ध्यान-भजन करता रहा। स्वप्न आया कि : "जाओ नोकरी पर।" स्वप्न भी नारायण ने ही दिया है। "तेरी मर्जी...!"

फिर गया आफिस में तो पोस्ट मास्टर ने कहा : "तुझे तो मैंने जरा ऐसे ही डाँटा था और तू सचमुच में चला गया ! देखो, कितना काम भटक गया? बैठो बैठो। माफ करना।"

हाथ मिलाया और फिर काम में लगा दिया।

भगवान का भजन करो तो जो रूठे हुए होते हैं वे भी राजी हो जाते हैं। भगवान को छोड़कर संसार के पीछे पड़े तो राजी

भगवान का भजन करो तो जो रूठे हुए होते हैं वे भी राजी हो जाते हैं। भगवान को छोड़कर संसार के पीछे पड़े तो राजी हुए भी नाराज हो जाते हैं।

हुए भी नाराज हो जाते हैं। जो प्रेम भगवान को करना चाहिए, वह अगर बाहर के व्यक्तियों को ज्यादा स्वार्थ से करने लग गये तो वे कभी न कभी रूठ जायेंगे। मित्र रूठ जाता है, पति रूठ जाता है, पत्नी रूठ जाती है लेकिन परमात्मा नहीं रूठता। जो कभी रूठता भी नहीं और कभी मरता भी नहीं वह हमारा राम, हमारा मालिक है।

अंबालाल आफिस में काम करता रहा। वह आँजणा पटेल था। उसका नियम था आठ घंटे भजन में बिताना। कीर्तन में उसकी खूब रुचि। कीर्तन करते करते हरि की मस्ती में खो जाय। जो आदिनारायण का दर्शन किया था उसके सुमिरन में खो जाय। दूसरे कीर्तन करनेवाले कीर्तन पूरा करके प्रसाद बाँटे। इसको प्रसाद देने आये तो यह तो अपनी मस्ती में मस्त! उसको जगाये तब वह प्रसाद लेता। देखता कि प्रसाद में भी मेरा नारायण है। नारायण का सुमिरन करता हुआ प्रसाद को देखता तो प्रसाद भी सचमुच नारायण का कृपा-प्रसाद बन जाता। फिर प्रसाद पाता। घर जाय। भोजन बनाने के लिए आटा गूँदे तो रग-रग में चलता रहे : 'नारायण... नारायण... नारायण...।' वह आटा, दिखे तो आटा ही मगर महाप्रसाद बन जाता। उसकी रग-रग में, हर विचार में, स्मृति में ' नारायण... नारायण...।' तार की खट खट में भी उसे लगता कि यह खट खट भी नारायण से हो रही है। पक्षियों का किल्लोल सुने तो जैसे ज्ञानी को शब्द ब्रह्म दिखता है वैसे ही उसको दिखता।

अंबालाल तेईस साल छः महीने और सत्रह दिन का हुआ। अंबालाल सोचता है कि भगवान के दर्शन किये, फिर भगवान अंतर्धान हो गये। तो अंतर में ही सार है। अंतर्मुख होने के सिवा कोई सार नहीं। बैठा ध्यान में, थोड़ा अंतर्मुख

अंबालाल सोचता है कि भगवान के दर्शन किये, फिर भगवान अंतर्धान हो गये। तो अंतर में ही सार है। अंतर्मुख होने के सिवा कोई सार नहीं।

हुआ, समय का पता नहीं चला। आफिस में देर से गया। पहलेवाला पोस्ट मास्टर बदल गया था। नये को किसीने बहका दिया था कि यह तो भगतड़ा है। कभी देर से अपनी मौज से आता है।

उसने इसको डाँट दिया– "गेट आऊट ।" अंबालाल चला गया। चलते चलते माऊन्ट आबू पहुँचा। अब उसे कोई मान-अपमान का भय नहीं। सब भूमि गोपाल की। माऊन्ट आबू की किसी छोटी-मोटी गुफा में बैठकर सर्वत्र नारायण देखते हुए मस्ती में रहने लगा। पक्षी की आवाज आती तो 'नारायण...।' रींछ की भयानक आवाज आती तो 'नारायण...।' हवा लगे तो 'नारायण...।' सब में 'नारायण... नारायण... नारायण...।' सुमिरन करते करते सात दिन और सात रात्रि वह भाव-समाधि में तल्लीन हो गया। चतुर्भुज नारायण प्रकट हुए और कहा : "यह अणु-अणु, परमाणु सबमें मुझे देख। जड़ जड़ नहीं है। उसमें सुषुप्त चेतना है। चेतना की घन सुषुप्ति अवस्था जड़ पदार्थ है। प्राणी, पक्षी और जंतु में वह चेतना जगी है। मनुष्य में उसका ज्यादा विकास हुआ है। चेतना अपने पूर्ण रूप से विकसित हो जाय, ऐसा कोई सद्गुरु मिले तो ज्ञान होवे। गुरु बिना तो मेरा दर्शन होवे तब आनंद, फिर मेरी स्मृति करके आनंद। लेकिन मेरे तत्त्व का साक्षात्कार तो अभी नहीं हुआ।"

खूनी को सरकार रोटी और कपड़ा देती है। जेल में भी रोटी और कपड़ा मिले तो जो भगवान का भजन करे उसे रोटी और कपड़े की कमी हो?

अंबालाल की बुद्धि खुल गयी। उसे पता चला कि 'गुरु बिन गत नहीं।'

हरिद्वार में कुंभ का मेला आ रहा था। वह कुंभ के मेले में गया। नौकरी तो पहले ही छोड़ चुका था। जिसको भगवान की कृपा होती है, भक्ति का रस मिलता है वह सरकार का गुलाम कब तक रहेगा? जिसको अंदर की बंदगी खुल गयी वह संसार की गुलामी कब तक करेगा?

मुर्दे को प्रभु देत है कपड़ा लकड़ा आग।
जिंदा नर चिंता करे उसके बड़े अभाग॥

चिंता करनी है तो उस बात की कर कि नारायण तत्त्व का साक्षात्कार हो जाय, दीदार हो जाय। अमर पद को पा ले। रोटी की चिंता करता है? माता के गर्भ में था तब भी पोषण हो रहा था। जब बाहर आया तो माता के स्तनों में दूध प्रकट कर दिया। न ज्यादा ठंडा न ज्यादा गरम। गरम हो तो मुँह जले, ठंडा हो तो वायु करे। ज्यादा फिका नहीं, ज्यादा मीठा नहीं। मीठा हो तो डायाबीटीस करे और फिका हो तो अच्छा न लगे। बिल्कुल अनुकूल। प्रत्येक बच्चे की भी वह इतनी रक्षा कर रहा है तो जो उसका भजन करे उसको किस बात की कमी रखेगा?

खूनी को सरकार रोटी और कपड़ा देती है। जेल में भी रोटी और कपड़ा मिले तो जो भगवान का भजन करे उसे रोटी और कपड़े की कमी हो? वह तो जहाँ जाय वहाँ रोटी, कपड़ा सब हाजिर!

कुंभ में किसी सिद्ध सद्गुरु की शरण में गया। उसका हृदय शुद्ध तो था ही। नारायण का भी आशीर्वाद था। गुरु के वचनों को आत्मसात् कर लिया। अब अंबालाल पटेल का पुत्र नहीं रहा, पटेल का पुत्र तो उसका शरीर था। वह तो ईश्वर का पुत्र था। वह तो संत बन गया, स्वामी अजर[illegible] 'जरनेवाला शरीर है। मैं [illegible] अजर हूँ। नारायण स्वरूप हूँ।' उसे गुरु ने ऐसा ज्ञान दे दिया।

ईश कृपा बिन गुरु नहीं, गुरु बिना नहीं ज्ञान।
ज्ञान बिना आत्मा नहीं, गावहिं वेद पुरान॥

*

'परिप्रश्नेन . . .'

[पू. बापू के श्रीचरणों में प्रश्नोत्तरी]

प्र० — ईश्वर को कैसे पाया जाय ?

उ० — हरेक साधक की अपनी-अपनी क्षमता होती है। सबकी अपनी-अपनी योग्यता होती है। उसके कुल का, संप्रदाय का जो भी मंत्र इत्यादि हो उसका जप-तप करता रहे, ठीक है। साथ ही साथ किसी ज्ञानवान महापुरुष का सत्संग सुनता रहे। बुद्ध पुरुष के सत्संग के द्वारा साधक का अधिकार बढ़ता जाएगा। साधक की योग्यता देखकर यदि ज्ञानवान मार्ग बताएं तो उस मार्ग पर चलने से साधक जल्दी अपने लक्ष्य तक पहुँच जाता है।

प्रथम भक्ति संतन कर संगा।
दूसर रति मम कथा प्रसंगा॥

प्र० — आत्मा और परमात्मा का मिलन कैसे होता है ?

उ० — सच पूछो तो आत्मा और परमात्मा ये एक ही चीज के दो नाम हैं। जैसे घटाकाश और महाकाश। घड़े में आया हुआ आकाश और महाकाश दोनों एक हैं। घड़े का आकाश महाकाश से कैसे मिले ? घड़े के आकाश को पता चल जाय कि मैं ही महाकाश हूँ तो वह महाकाश से मिल गया। तरंग को पता चल जाय कि मैं जल हूँ तो वह जल से मिल गया। आत्मा को पता चल जाय कि मैं आत्मा हूँ ... परमात्मा से अभिन्न हूँ तो वह परमात्मा से मिला हुआ ही है।

प्र० — स्वामीजी ! आत्मा को दुःख, शोक स्पर्श नहीं कर सकते। हम देह नहीं, आत्मा हैं । फिर भी हमको दुःख तो होता है। यह कैसे ?

उ० — हाँ, यह कइयों की समस्या है। लोग मेरे पास आते हैं और बोलते हैं : 'बापू ! फलाना आदमी ऐसा-ऐसा बोलता है...यह सुनकर मेरी आत्मा जलती है।'

आत्मा कभी जलती नहीं। यह तो मनुभाई (मन) को शोक होता है। हर्ष-शोक मन को होता है। राग-द्वेष मति के धर्म हैं। भूख-प्यास प्राणों को लगती है। प्राण चलते हैं इसलिए भूख-प्यास लगती है। काला-गोरा होना यह चमड़ी का धर्म है। मोटा और पतला होना यह देह का धर्म है। तुम अपने को देह मान लेते हो कि मैं मोटा हुआ, मैं गोरा हुआ।

जो कुछ होता है वह इन्द्रियों में, मन में, बुद्धि में, देह में होता है। आत्मा इन सबसे अलग है। मन में अच्छा भाव आया और गया, शरीर और अंतःकरण द्वारा अच्छा कार्य हुआ, बुरा कार्य हुआ। इन सबको जो देखनेवाला है वह आत्मा है। सूक्ष्म दृष्टि से इसका अनुभव किया जाता है। अनुभव करनेवाला फिर अलग नहीं रहता, वही हो जाता है।

सो जाने जासू देहू जनाहीं।
जानत तुम ही तुम ही हो जाईं॥

प्र० — भगवान श्रीकृष्ण स्वधाम-गमन के समय अपने प्यारे भक्त उद्धव को साथ क्यों न ले गये और बद्रिकाश्रम क्यों भेज दिया ?

उ० — उद्धव ने देखा कि अब सोने की द्वारिका के साथ पूरा यदुवंश याने भगवान का पूरा परिवार उनकी आँखों के सामने खत्म हो रहा है फिर भी श्रीकृष्ण को कोई शोक नहीं, कोई आसक्ति नहीं। क्योंकि वे आत्मा में निष्ठ हैं, तत्त्व में खड़े हैं। वे प्रपंच को सत्य नहीं मानते। सब प्रपंच मिथ्या है।

यह मिथ्या प्रपंच का विसर्जन हो रहा था। उद्धव ने देखा कि भगवान अपनी माया समेट रहे हैं। अब वे स्वधाम जाने की तैयारी में हैं। उन्होंने कहा: "प्रभु ! दया करो। मुझे साथ में ले जाओ।"

श्रीकृष्ण ने कहा: "उद्धव ! साथ में कोई आया नहीं और साथ में कोई जायेगा नहीं।

साधक की योग्यता देखकर यदि ज्ञानवान मार्ग बताएं तो उस मार्ग पर चलने से साधक जल्दी अपने लक्ष्य तक पहुँच जाता है।

सच पूछो तो आत्मा और परमात्मा ये एक ही चीज के दो नाम हैं। आत्मा को पता चल जाय कि मैं आत्मा हूँ... परमात्मा से अभिन्न हूँ तो वह परमात्मा से मिला हुआ ही है।

यदिदं मनसा वाचा चक्षुर्भ्यां श्रवणादिभिः।
नश्वरं गृह्यमाणं च विद्धि माया मनोमयम्॥

मन से, वाणी से, आँख से, कान से जो कुछ अनुभव में आता है वह सब नश्वर है, मनोमय है, माया-मात्र है। हे उद्धव! मैं तुझे तत्त्वज्ञान सुनाता हूँ। वह सुनकर तू बद्रिकाश्रम चला जा, एकान्त में बैठ जा। 'मैं आत्मा हूँ तो कैसा हूँ ' यह खोज। 'मैं कौन हूँ...? मैं कौन हूँ...?' यह अपने आपको गहरीई से पूछ।"

बच्चा 'यह क्या है...? वह क्या है...? यह कौन है...? वह कौन है...?' ऐसा पूछता है लेकिन 'मैं कौन हूँ...?' ऐसा संसार के किसी बच्चे ने नहीं पूछा। वह आत्मज्ञान का खजाना बन्द का बन्द रह गया।

अब तुम अपने आपसे पूछो : 'मैं कौन हूँ?' खाओ, पियो, चलो, घूमो। फिर पूछो : 'मैं कौन हूँ?'

'मैं रमणलाल हूँ।'

यह तो तुम्हारे देह का नाम है। तुम कौन हो? अपने को पूछा करो। जितना गहरा पूछोगे उतना दिव्य अनुभव होने लगेगा। एकान्त में, शान्त वातावरण में बैठकर ऐसा पूछो... ऐसा पूछो कि बस! पूछना ही हो जाओ। एक दिन, दो दिन, दस दिन में यह काम नहीं होगा। खूब अभ्यास करोगे तब 'मैं कौन हूँ?' यह प्रगट होने लगेगा और मन की चंचलता मिटने लगेगी। बुद्धि के विकार नष्ट होने लगेंगे। शरीर का तूफान शांत होने लगेगा। यदि ईमानदारी से साधना करने लगो न, तो छः महीने में वहाँ पहुँच जाओगे जहाँ छः साल से चला हुआ व्यक्ति भी नहीं पहुँच पाता है। छः महीने बैलगाड़ी चले और छः घण्टे हवाई जहाज उड़े तो कौन आगे पहुँचेगा?

तत्त्वज्ञान हवाई जहाज की यात्रा है।

भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं :

"हे उद्धव! तू बद्रिकाश्रम चला जा। कोई किसीका नहीं है, कोई किसीके साथ आया नहीं, कोई किसीके साथ जायेगा नहीं। तू बोलता है कि मैं तुम्हारे साथ चलूँ लेकिन तुम मेरे साथ आये नहीं, न मैं तुम्हारे साथ आया हूँ। सब अकेले-अकेले जायेंगे। मुझसे तू तत्त्वज्ञान सुन ले। फिर मुझसे तू ऐसा मिलेगा कि बिछड़ने का दुर्भाग्य ही नहीं आयेगा।"

ऐसे तो श्रीकृष्ण उद्धव के सिर पर हाथ रख देते! फुर्र्र्... ! 'तू मुक्त हो गया !' नहीं। श्रीकृष्ण ने तत्त्वज्ञान का उपदेश दिया है। "जा बद्रिकाश्रम, एकान्त में बैठ। जो उपदेश दिया है उसका बराबर अनुभव कर।"

पशु होते हैं न? वे पहले घास ऐसे ही खा लेते हैं। फिर बैठे-बैठे जुगाली करते हैं। ऐसे ही तुम भी कथा - सत्संग सुन लो; फिर एकान्त में जाकर उसका चिन्तन - मनन करो।

जितनी देर सुनते हो उससे दस गुना मनन करना चाहिए। मनन से दस गुना निदिध्यासन करना चाहिए। हम भी डीसा में अपने आपमें डूबे रहते थे। पूज्यपाद गुरुदेव के आशीर्वाद के बाद तुरन्त निकल पड़ते समाज में हुश... हो... हुश... हो...! तो काम नहीं बनता। सुनो और एकान्त में बैठकर जमाओ।

प्र० — कलियुग में परमात्म-प्राप्ति शीघ्र कैसे होती है?

उ० — कहते हैं कि सतयुग में वर्षों के पुण्यों से परमात्म-प्राप्ति होती थी, द्वापर में यज्ञ से होती थी, ध्यान से होती थी। 'दानं केवलं कलियुगे ' अथवा 'कलजुग केवल नाम

बच्चा 'यह क्या है...? वह क्या है...? यह कौन है...? वह कौन है...?' ऐसा पूछता है लेकिन ' मैं कौन हूँ ...?' ऐसा संसार के किसी बच्चे ने नहीं पूछा। वह आत्मज्ञान का खजाना बन्द का बन्द रह गया।

आधारा। जपत नर उतरे सिन्धु पारा।'

शास्त्र का कोई एक हिस्सा लेकर निर्णय नहीं लेना चाहिये। शास्त्र के तंत्मत से वाकिफ होना चाहिये। यह भी शास्त्र ही कहता है कि :

राम भगत जग चारि प्रकारा
सुकृतिनो चारउ अनघ उदारा ।
चहुँ चतुरन कर नाम आधारा
ज्ञानी प्रभुहिं विशेष पियारा ॥

राम के, परमात्मा के भक्त चार प्रकार के हैं। चारों भगवन्नाम का आधार लेते हैं, श्रेष्ठ हैं; लेकिन ज्ञानी तो प्रभु को सब से विशेष प्यारा है।

गीता कहती है :

न हि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते।

दूसरे युगों में जप से, यज्ञ से होता था तो श्रीकृष्ण ने अर्जुन को तत्त्वज्ञान का उपदेश क्यों दिया? उद्धव को तत्त्वज्ञान क्यों दिया?

जन-साधारण के लिये जप अपनी जगह पर ठीक है, हवन अपनी जगह पर ठीक है। लेकिन जिनके पास समझ है, बुद्धि है वे अपनी-अपनी योग्यता के अनुसार साधन करके पार हो जाते हैं। जनक अष्टावक्र से तत्त्वज्ञान सुनकर पार हो गये।

वह भी जमाना था कि लोग १२-१२ वर्ष, १५-१५ वर्ष, २५-२५ वर्ष जप तप करते थे तब कहीं उनकी सिद्धि होती थी। लेकिन कलियुग में सिद्धि जल्दी हो जाती है।

एक आदमी को पेट में कुछ दर्द हुआ। वह सेठ था बड़ा! वह वैद्य के पास दवा लेने गया। वैद्य ने देखा कि यह अमीर आदमी है। इसको सस्ती दवा काम में आयेगी नहीं। बोले :

"ठहरो जरा ! दवा घोटनी है, सुवर्णभस्म डालनी है, बंगभस्म डालनी है, थोड़ा समय लगेगा। बढ़िया दवा बना देता हूँ।"

काफी समय उसको रोका बाद में दवा दी। उसने खायी और वह ठीक हो गया। वैद्य ने पूछा :

"अब कैसा है?"

"अच्छा है... आराम हो गया। कितने पैसे?"

"केवल ११०० रुपये।"

सेठ ने दे दिये। वैसे का वैसा रोग एक गरीब को हुआ और उसी वैद्य के पास आया। बोला : "पेट दुखता है।"

वैद्य ने देखकर कहा : "कोई चिन्ता की बात नहीं। यह ले लो पुड़िया। एक दोपहर को खाना, एक शाम को खाना। ठीक हो जायेगा। "

"कितने पैसे?"

"पाँच पैसे दे दो।"

उसने दे दिये। दो पुड़िया खाकर वह ठीक हो गया। मर्ज वही का वही। वैद्य भी वही का वही। लेकिन एक से ११०० रुपये लिये और समय भी ज्यादा लगाया, दूसरे से पाँच पैसे लिये और तुरन्त दवा दे दी।

ऐसे ही वैद्यों का वैद्य परमात्मा वही का वही है। हमारे अज्ञान का मर्ज भी वही का वही है। पहले के जमाने में लोगों के पास इतना समय था, इतने शुद्ध घी-दूध थे, इतनी शक्तियाँ थीं तो लम्बा-लम्बा उपचार करने के बाद हमारा दर्द मिटता था। अभी? वह दयालु भगवान है कि आ जाओ भाई! ले जाओ जल्दी-जल्दी।

अष्टावक्र बोलते हैं कि 'श्रवण मात्रेण।' सुनते-सुनते भी आत्मज्ञान हो सकता है। पहले कितना तप करने के बाद बुद्धि शुद्ध, स्थिर होती थी वह अब सुनते - सुनते हो सकती है।

ऐसा नहीं है कि केवल उस समय सतयुग था, अभी नहीं है। सत्त्वगुण में तुम्हारी वृत्ति है तो सतयुग है। रजो मिश्रित सत्त्वगुण में वृत्ति है तो द्वापर है। तमो मिश्रित रजोगुण में वृत्ति है तो त्रेतायुग है और तमोगुण में वृत्ति है तो कलियुग है।

ऐसा नहीं है कि केवल उस समय सतयुग था, अभी नहीं है। सत्त्वगुण में तुम्हारी वृत्ति है तो सतयुग है। रजो मिश्रित सत्त्वगुण में वृत्ति है तो द्वापर है। तमो मिश्रित रजोगुण में वृत्ति है तो त्रेतायुग है और तमोगुण में वृत्ति है तो कलियुग है।

सतयुग में भी कलियुग के आदमी थे। राम थे तब भी रावण था। कृष्ण थे तब भी कंस था। अच्छे युगों में सब अच्छे आदमी ही थे ऐसी बात नहीं है। बुरे युग में सब बुरे आदमी हैं ऐसी बात भी नहीं। अत: दैवी संपदा के जो सद्‌गुण हैं - निर्भयता, सत्त्वसंशुद्धि, ज्ञान में स्थिति, स्वाध्याय, शौच, आर्जव, क्षमा आदि छब्बीस लक्षण अपने जीवन में लायें और आत्मवेत्ता महापुरुषों का संग करें तो कलियुग में शीघ्र परमात्म-प्राप्ति हो जाएगी। दैवी संपदा के सद्‌गुण अपने जीवन में लानेवाला आदमी धन-ऐश्वर्य में आगे बढ़ना चाहे तो बढ़ सकता है, यश-सामर्थ्य में चमकना चाहे तो भी चमक सकता है और भगवत्प्राप्ति करना चाहे तो भी कर सकता है।

*

पुण्यशाली मानव सज्जनों का समागम करके नित्य-अनित्य पदार्थों के तत्त्व को सदैव विचार करता है, अल्प भाषण करता है, लाभकारी और योग्य परिमाण में सात्त्विक आहार करता है, अभिमान रहित होता है, दीनों पर दया-दृष्टि रखता है, सुखी मनुष्यों के साथ सदैव प्रेम रखता है और भगवान का प्रिय बनकर रहता है।

– विज्ञानशतक : १५

इस कर्मभूमि (मनुष्यलोक) को प्राप्त करके जो मंदभागी पुरुष तप नहीं करता वह वैदूर्यमणि की थाली में चंदन के ईंधन से लहसुन को पकाता है, सोने के हल की नोक से आक के मूल के लिए पृथ्वी जोतता है, और कपूर के टुकड़ों को पीस कर कोदरे के आसपास बागड़ बनाता है। अर्थात् मनुष्य देह जैसी महंगी वस्तु को तुच्छ हेतु के लिए विषय भोग में व्यर्थ व्यय कर डालता है।

– नीतिशतक : ६० (भर्तृहरि)

बाघिन की तरह डरावनी वृद्धावस्था सामने खड़ी है। शत्रुओं की तरह रोग शरीर पर प्रहार करते हैं, टूटे हुए घड़े में से पानी की तरह आयुष्य बहता जाता है; फिर भी लोग अपने अकल्याण का आचरण करते हैं; यह आश्चर्य की बात है।

– वैराग्यशतक : ७५ (भर्तृहरि)

किसी एक साधु के पास उनके शिष्य विदा लेने गये और कहा : "महाराज! हम पर दया रखना और हमें याद करना।" गुरु ने जवाब दिया : "हमारे पाप जगे होंगे तो प्रभु को याद करना छोड़कर तुम्हें याद करेंगे।"

– नित्यप्रसाद

नारदजी कहते हैं : "शुकदेव! शास्त्र शोक को दूर करनेवाला है, शांतिकारक और कल्याणमय है। जो अपने शोक का नाश करने के लिए शास्त्र का श्रवण, मनन करता है वह उत्तम बुद्धि पाकर सुखी होता हैं। शोक के सहस्रों और भय के सैकड़ों स्थान हैं, जो प्रतिदिन मूढ़ पुरुषों पर ही अपना प्रभाव डालते हैं, भक्त और विद्वान पर नहीं।"

(महाभारत, शांतिपर्व, मोक्षपर्व : अध्याय - ३३० श्लोक १,२)

और आँसू बहाया करती थी, वह कमरा भी कितना पावन हो गया होगा !

शादी को अब तीन दिन बचे थे... दो दिन बचे थे...। रात को नींद नहीं, दिन को चैन नहीं। रोते-रोते आँखें लाल हो गई। माँ पुचकारती है, भाभी दिलासा देती है और भाई रिझाता है, लेकिन कर्मावती समझती है कि यह सारा पुचकार बैल को गाड़ी में जोतने का है...। यह सारा स्नेह संसार के घाट में उतारने का है...।

"हे भगवान ! मैं असहाय हूँ... निर्बल हूँ... हे निर्बल के बल राम ! मुझे सत्प्रेरणा दे... मुझे सन्मार्ग दिखा।"

कर्मावती की आँखों में आँसू हैं... हृदय में भावनाएँ छलक रही हैं और बुद्धि में द्विधा है : "क्या करूँ? शादी को इन्कार तो कर नहीं सकती... मेरा स्त्री शरीर...? क्या किया जाय ?"

मृत्यु आकर जब मार डालती है, तब परिवारवाले सह लेते हैं, कुछ कर नहीं पाते, चुप हो जाते हैं। यदि मृत्यु से सदा के लिए पीछा छुड़ानेवाले ईश्वर के रास्ते पर चलते हैं तो कोई जाने नहीं देता।

भीतर से आवाज आयी : "तू अपने को स्त्री मत मान, अपने को लड़की मत मान, अपने को लड़का मत मान, तू अपने को भगवान का भक्त मान, अपने को आत्मा मान। अपने को स्त्री मानकर कब तक अपने को कोसती रहोगी ? अपने को पुरुष मानकर कब तक बोझा ढोते रहोगे ? मनुष्यत्व तो तुम्हारा चोला है। शरीर का एक ढांचा है। तू कोई आकार नहीं है। तू तो निराकार बल स्वरूप आत्मा है। जब-जब तू चाहेगी तब-तब तेरा मार्गदर्शन होता रहेगा। हिम्मत मत हार। पुरुषार्थ परम देव है। हजार विघ्न-बाधाएं आ जाय, फिर भी अपने पुरुषार्थ से नहीं हटना।"

तुम साधना के मार्ग पर चलो तो जो भी इन्कार करते हैं, पराये लगते हैं, शत्रु लगते हैं वे भी जब तुम साधना में उन्नत होंगे, ब्रह्मज्ञान में उन्नत होंगे तब तुमको अपना मानने लग जाएँगे, शत्रु भी मित्र बन जाएँगे। कई महापुरुषों का यह अनुभव है :

आँधी और तूफान हमको न रोक पाये।
मरने के सब इरादे जीने के काम आये।
हम भी हैं तुम्हारे कहने लगे पराये॥

"तू अपने को स्त्री मत मान, अपने को लड़की मत मान, तू अपने को भगवान का भक्त मान। तू कोई आकार नहीं है। तू तो निराकार बल स्वरूप आत्मा है। हिम्मत मत हार। पुरुषार्थ परम देव है। हजार विघ्न-बाधाएँ आ जाय, फिर भी अपने पुरुषार्थ से नहीं हटना।"

कर्मावती को भीतर से हिम्मत आयी। अब शादी को एक ही दिन बाकी रहा। सूर्य ढलेगा... शाम होगी... रात्रि होगी.. फिर सूर्योदय होगा... और शादी का दिन ? इतने ही घण्टे बीच में ? अब समय नहीं गँवाना है। रात सोकर या रोकर नहीं गँवाना है। आज की रात जीवन या मौत की निर्णायक रात होगी।

कर्मावती ने पक्का निर्णय कर लिया। चाहे कुछ भी हो जाय, कल सुबह बारात घर के द्वार पर आये, उसके पहले यहाँ से भागना पड़ेगा। बस यही एक मार्ग है। यही आखिरी फैसला है।

क्षण... मिनट... और घण्टे बीत रहे हैं। परिवारवाले लोग शादी की जोरदार तैयारियाँ कर रहे हैं। कल सुबह बारात का सत्कार करना है, इसका इन्तजाम हो रहा है। कई सगे-सम्बन्धी-मेहमान घर आये हुए हैं। कर्मावती अपने कमरे में यथायोग्य मौके की इन्तजार में घण्टे गिन रही है।

दोपहर हुई... शाम हुई... सूर्य ढला...। कल के लिए पूरी तैयारियाँ हो चुकी हैं। रात्रि का भोजन हुआ। दिन के परिश्रम से थके लोग रात्रि को देरी से बिस्तर पर लेट गये हैं। दिन भर जहाँ शोरगुल मचा था, वहाँ शांति

छा गई है।

ग्यारह बजे... दीवार की घड़ी ने डंके बजाये ... फिर टिक्... टिक्... टिक्... टिक्... क्षणें मिनट में बदल रही हैं... घड़ी का काँटा आगे सरक रहा है... सवा ग्यारह... साढ़े ग्यारह... फिर रात्रि के नीरव वातावरण में घड़ी का एक डंका सुनाई पड़ा... टिक्... टिक्... टिक्... पौने बारह... घड़ी आगे बढ़ी... पन्द्रह मिनट और बीते... बारह बजे... घड़ी ने बारह डंके बजाना शुरु किया... कर्मावती गिनने लगी: एक... दो... तीन... चार... दस... ग्यारह... बारह।

कर्मावती ने पक्का निर्णय कर लिया। चाहे कुछ भी हो जाय, कल सुबह बारात घर के द्वार पर आये, उसके पहले यहाँ से भागना पड़ेगा। बस यही एक मार्ग है। यही आखिरी फैसला है।

अब समय हो गया। कर्मावती उठी। जाँच लिया कि घर में सब नींद में खुर्राटे भर रहे हैं। पूजा-घर में बाँकेबिहारी कृष्ण कन्हैया को प्रणाम किया... आँसू भरी आँखों से एकटक निहारा... भाव-विभोर होकर अपने प्यारे परमात्मा के रूप को गले लगा लिया : "अब मैं आ रही हूँ तेरे द्वार... मेरे लाला... !"

चुपके से द्वार खोला। दबे पाँव घर से बाहर निकली। उसने आजमाया कि आँगन में भी कोई जागता नहीं है। कर्मावती आगे बढ़ी। आँगन छोड़कर गली में आ गई। फिर सर्राटे से भागने लगी। वह गलियाँ पार करती हुई रात्रि के अन्धकार में अपने को छुपाती नगर से बाहर निकल गई और जंगल का रास्ता पकड़ लिया। अब तो वह दौड़ने लगी थी। घरवाले संसार की कीचड़ में उतारें उसके पहले बाँकेबिहारी गिरधर गोपाल के धाम में उसे पहुँच जाना था।

चुपके से द्वार खोला। दबे पाँव घर से बाहर निकली। उसने आजमाया कि आँगन में भी कोई जागता नहीं है। कर्मावती आगे बढ़ी। आँगन छोड़कर गली में आ गई। फिर सर्राटे से भागने लगी। वह गलियाँ पार करती हुई रात्रि के अन्धकार में अपने को छुपाती नगर से बाहर निकल गई और जंगल का रास्ता पकड़ लिया। अब तो वह दौड़ने लगी थी। घरवाले संसार की कीचड़ में उतारें उसके पहले बाँकेबिहारी गिरधर गोपाल के धाम में उसे पहुँच जाना था। वृन्दावन कभी देखा नहीं था, उसके मार्ग का भी पता उसे नहीं था लेकिन सुन रखा था कि इस दिशा में है।

कर्मावती भागती जा रही है। कोई देख लेगा अथवा घर में पता चल जायगा तो लोग खोजने निकल पड़ेंगे...। पकड़ी जाऊँगी तो सब मामला चौपट हो जाएगा। संसारी माता-पिता इज्जत-आबरू का खयाल करके शादी कराके ही रहेंगे। चौकी-पहरा बैठा देंगे। फिर छूटने का कोई उपाय नहीं रहेगा। इस विचार से कर्मावती के पैरों में ताकत आयी। वह मानो उड़ने लगी। ऐसी भागी, ऐसी भागी कि बस...। मानो बन्दूक लेकर कोई उसके पीछे पड़ा हो।

(क्रमशः)

मनुष्य यदि व्यर्थ के संकल्प-विकल्पों को कम कर दे तो अल्प काल में ही उसे अनुपम अनुभूति हो सकती है। यदि वह अपने संकल्प न बढ़ाये तो ईश्वर को अपना संकल्प पूरा करने में आसानी होगी। जो भगवान के संकल्प में अपने संकल्प को मिला देता है, तो ईष्ट की या गुरु की अनुभूति उसकी अपनी अनुभूति हो जाती है।

भोजन विधि

अधिकांश मानव सही भोजन विधि नहीं जानते हैं। इससे उनकी जठराग्नि बिगड़ती है।

मनुष्य को सुबह और शाम दो बार भोजन करना चाहिए। दो समयों के बीच में भोजन नहीं करना चाहिये। दोनों भोजनों के बीच में बार बार चाय पीना, नाश्ता (तामस पदार्थ) आदि करने से पाचनशक्ति कमजोर होती है; ऐसा व्यवहार में मालूम पड़ता है। दोनों भोजनों के बीच में कम से कम छः से आठ घंटों का अन्तर रखना चाहिए।

सही भूख को पहचाननेवाले मानव बहुत कम हैं। इससे भूख न लगी हो फिर भी भोजन करने से रोगों की संख्या बढ़ती जाती है। सुबह भोजन किया हो और शाम को शुद्ध डकार आये, आलस तथा बेचैनी न रहें, मल, मूत्र, वायु, योग्य ढंग से होता रहे, शरीर हलका रहे, भोजन के प्रति रुचि हो तब समझना चाहिए कि भोजन पच गया है। पूर्व किया हुआ भोजन पच जाय तभी फिर भोजन करना चाहिए।

व्यवहार में हम देखते हैं कि पाँच मिनट पहले भोजन की अरुचि बतानेवाला व्यक्ति पाँच मिनट बाद भोजन करने को तैयार हो जाता है। तब वह व्यक्ति इन्द्रियगत संयम न होने के कारण भोजन करने तैयार हो जाता है। सचमुच उस व्यक्ति का पूर्व किया हुआ भोजन पचा नहीं है; फिर भी आहार करता है, इससे उसके शरीर में अनेक रोग घर कर जाते हैं। रोग का कारण पाचनशक्ति का मंद पड़ना ही है।

भोजन करते समय माता-पिता, मित्र, वैद्य, रसोइया, हंस, मोर, सारस या चकोर पक्षी की दृष्टि उत्तम मानी जाती है। किन्तु गरीब, सामान्य, भूखे, पापी, पाखंडी या रोगी मानव, मुर्गा और कुत्ते की नजर अच्छी नहीं मानी जाती।

भोजन का पात्र सुवर्ण का हो तो आयुष्य को टिकाये रखता है, आँखों का तेज बढ़ाता है। चाँदी के बर्तन में भोजन करने से आँख की शक्ति बढ़ती है, पित्त नाश होता है और वायु तथा कफ समाप्त होते हैं। कांसे के बर्तन में भोजन करने से बुद्धि बढ़ती है, रक्त तथा पित्त को शुद्ध करता है। लोहे के बर्तन में भोजन करने से सूझन तथा पीलापन नहीं रहता, शक्ति बढ़ती है और पीलिये के रोग में फायदा होता है। पत्थर या मिट्टी के बर्तनों में भोजन करने से लक्ष्मी का क्षय होता है। लकड़ी का बर्तन रुचिकर तथा कफ-नाशक है। पत्तों का बर्तन भोजन में रुचि उत्पन्न करता है, जठराग्नि को प्रज्वलित करता है, ज़हर तथा पाप को नाश करता है। पानी पीने के लिए ताम्रपात्र उत्तम है। यह उपलब्ध न हो तो मिट्टी का पात्र भी हितकारी है।

भोजन करते समय चित्त को एकाग्र रखकर सबसे पहले मिष्टान्न पदार्थ, फिर खट्टे और खारे और अंत में तीते और कड़वे पदार्थ खाने चाहिये। दाड़िम आदि फल तथा गन्ना भी पहले लेना चाहिए। भोजन के बाद आटे के भारी पदार्थ, नये चावल या चूड़ा नहीं खाना चाहिये। भोजन चबा-चबाकर खाना चाहिये। भोजन में बीस या पचीस मिनट का समय बिताना चाहिए। जल्दी भोजन करने वाले का स्वभाव क्रोधी होता है। भोजन अत्यन्त धीमी गति से भी नहीं करना चाहिए। पहले घी के साथ कठिन पदार्थ खाने, फिर कोमल व्यंजन खाने और अंत में प्रवाही पदार्थ खाने चाहिये। भोजन के पश्चात् तुरन्त पानी नहीं पीना चाहिये।

अत्यन्त गरम अन्न बल का ह्रास करता है। ठंडा

या सूखा भोजन देर से पचता है। माप से अधिक खाने से पेढू चढ़ जाता है। आलस आता है, शरीर भारी होता है और पेट में से आवाज आती है। माप से कम अन्न खाने से शरीर दुबला होता है और शक्ति का क्षय होता है। बिना समय के भोजन करने से शक्ति का क्षय होता है। बिना समय के भोजन करने से शरीर अशक्त बनता है, सिरदर्द और अजीर्ण के भिन्न भिन्न रोग होते हैं। समय बीत जाने पर भोजन करने से अग्नि वायु से कमजोर हो जाती है इससे खाया हुआ शायद ही पचता है और दुबारा भोजन की इच्छा नहीं होती। जितनी भूख हो उससे आधा भाग अन्न से, पा भाग जल से भरना चाहिए और पा भाग वायु के आने जाने के लिए खाली रखना चाहिए। भोजन से पूर्व पानी पीने से पाचनशक्ति कमजोर होती है, शरीर दुर्बल होता है। भोजन के बाद तुरन्त पानी पीने से आलस बढ़ता है और भोजन नहीं पचता।

प्यासे व्यक्ति को भोजन नहीं करना चाहिए। प्यासा व्यक्ति अगर भोजन करता है तो उसे आंतों के भिन्न भिन्न रोग होते हैं। भूखे व्यक्ति को पानी नहीं पीना चाहिए। भूख लगी हो किन्तु भूख शान्त किये बिना पानी पीने से जलोदर (उदरमें पानी भर जाने का रोग) होता है। भोजन के बाद नमक से मुँह साफ करके गीले हाथ से आँख का स्पर्श करना चाहिये। हथेली में पानी भरकर आँख को उसमें डुबाने से आँख की शक्ति बढ़ती है। भोजन के बाद पद्धतिपूर्वक वज्रासन करना तथा दस से पन्द्रह मिनट बाँई करवट सो जाना चाहिये।

भोजन के बाद मूत्र प्रवृति करना जिससे आयुष्य की वृद्धि होती है। मूत्र प्रवृत्ति के बाद तुरन्त पानी पीना लाभकारी नहीं है। मूत्र करने की इच्छा हुई हो तब पानी पीना, भोजन करना, मैथुन करना आदि भी हितकारी नहीं हैं। कारण कि ऐसा करने से पेशाब के भिन्न भिन्न रोग होते हैं; ऐसा वेदों में स्पष्ट बताया गया है।

*

श्री महेश्वर ने कहा : "देवी ! जो आलस्य और अहंकार छोड़कर गुरुजनों की आज्ञा का पालन करता है, समस्त मनुष्यों में उससे बढ़कर पुण्यात्मा दूसरा कोई नहीं है, क्योंकि वेदों की आज्ञा के समान गुरुजनों की आज्ञा का पालन अभीष्ट माना गया है।"

(महाभारत - अनुशासन पर्व - दानधर्मपर्व : अध्याय - १४२)

श्री भगवान : "हे नारद ! जो धर्मोपदेश के द्वारा अज्ञानी पुरुषों को ज्ञान प्रदान करता है अथवा जो किसीको समूची पृथ्वी का दान कर देता है तो उस ज्ञानदान का फल पृथ्वीदान के बराबर ही माना गया है। इसलिए साधु पुरुष जन्म और बन्धन के भय को दूर करनेवाला ज्ञान ही देते हैं।"

(महाभारत - शांतिपर्व - मोक्षपर्व - अध्याय : २०९)

भगवान श्रीकृष्ण : "धर्मराज ! कुटिलता मृत्यु का स्थान है और सरलता ब्रह्म की प्राप्ति का साधन है। इस बात को ठीक ठीक समझ लेना ही ज्ञान का विषय है, इससे विपरीत जो कुछ कहा जाता है वह प्रलाप है। भला, वह किसीका क्या उपकार करेगा ?"

(महाभारत - अश्वमेधपर्व - अध्याय : ११ श्लोक-४)

जिस कार्य से भगवच्चिन्तन में कमी हो उसे कभी न करें। एक समय या दो समय भूखे रहने से यदि भजन बढ़ता हो तो भूखा रहना चाहिए। जहाँ तक हो खर्च कम करें। आवश्यकताओं को न बढ़ायें और अधिक समय सबको भजन में ही लगाने की चेष्टा करना चाहिए।

बाल शिविरार्थियों के अनुभव

'मुझे विद्यार्थी शिविर बहुत अच्छा लगता है...'

मैं जब पहली बार अहमदाबाद में पूज्य बापू का शिविर भरने गई थी तब मुझे बहुत ही आनंद हुआ था। शिविर में जाने के बाद ही मैं सीखी कि सत्संग से मानवजीवन में कल्पित उच्च ध्येय प्राप्त किया जा सकता है। सत्संग कल्पवृक्ष है। मैं नहीं जानती थी ऐसी कितनी ही बातें मुझे शिविर में से जानने मिलीं।

सुबह जल्दी उठकर आकाश में तारे हों तब तक स्नान कर लें तो वह ऋषि-स्नान कहा जाता है। तारों के अस्त होने के बाद स्नान करें तो वह मानव-स्नान कहा जाता है और सूर्योदय होने के बाद स्नान करें तो वह दानव-स्नान कहा जाता है। मैं शिविर में आने के बाद ही यह सीखी हूँ। जिस दिन से मुझे इस बात का ज्ञान हुआ उस दिन से मैंने दृढ़ संकल्प किया कि मुझे प्रतिदिन ऋषि-स्नान करना चाहिये। मैं अब तक तीन शिविरों में जा चुकी हूँ। शिविर में अपने साथ आये हुए अपने जैसे भाई-बहन भोजन भी बनाते हैं और बाकी सभी काम वे करते हैं। ऐसा देखकर मुझे बहुत आनंद होता। मैं भी उस काम में जुट जाती। तीसरे शिविर में से भी मुझे दूसरा भी कितना ही जानने को मिला है। सुबह में जल्दी उठकर बिस्तर में ही थोड़ी देर ध्यान करके अपने दोनों हाथ देखकर के फिर स्नान आदि दूसरे कार्य करने से हमें बहुत शक्ति प्राप्त होती है।

भोजन करने से पहले हाथ पाँव धोना चाहिये किन्तु रात को सोते समय पाँव गिले नहीं रखने चाहिए। बड़े लोगों के साथ किस तरह व्यवहार करना, यह भी मैं इस शिविर में सीखी हूँ। किसी अन्य के चप्पल, कपड़े पहनने नहीं चाहिये। चाय, कोफी, सिगरेट जैसे दूषणों से दूर रहना चाहिये। ठूँस-ठूँस कर भोजन न करना और दूसरों को भी ऐसा करने में मजबूर नहीं करना चाहिये। अपशब्द खुद भी न बोलना और सुनना भी नहीं चाहिये। किसीको दुःख हो ऐसी कटु, हल्की एवं अहंकार युक्त वाणी का उच्चारण नहीं करना चाहिए। ऐसा तो मैं बहुत कुछ सीखी हूँ।

मैं जब घर पर थी तब दानव-स्नान करती थी; परन्तु जब से मैं शिविर में गई हूँ तब से मैं ऋषि-स्नान करती हूँ। ऋषि-स्नान करने से मुझे बहुत सुख प्राप्त होता हो ऐसा लगता है।

यहाँ की साध्वियों और शिविरार्थी बहनों के साथ रहने में मुझे बहुत मजा आता है। प्रातःकाल नाह-धोकर सत्संग-ध्यान में बैठने से मानो कोई निराला ही आनंद प्राप्त होता है। मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि तीन दिन के शिविर के बाद घर जाना पड़ेगा। फिर ऐसा सुनहला अवसर कब प्राप्त होगा? बापू के पास रहते हैं तो किसी भी प्रकार का भय नहीं रहता। असीम आनंद होता है। हमको लगता है कि ऐसा सुंदर वातावरण मानो कभी देखा ही न हो।

एक बात स्पष्ट है कि यहाँ आने के बाद के सभी अनुभव सुखमय हैं। ऐसा आनंद मुझे अन्यत्र कभी प्राप्त नहीं हुआ।

मेरा स्वास्थ्य सुधरा, मेरी स्मरण शक्ति बढ़ी, साथ ही साथ निर्भयता और पवित्रता के संस्कार भी मुझे खूब प्राप्त हुए। मेरे माता पिता के लिए मेरे हृदय में पहले की अपेक्षा

सुबह जल्दी उठकर आकाश में तारे हों तब तक स्नान कर लें तो वह ऋषि-स्नान कहा जाता है। तारों के अस्त होने के बाद स्नान करें तो वह मानव-स्नान कहा जाता है और सूर्योदय होने के बाद स्नान करें तो वह दानव-स्नान कहा जाता है। मैं शिविर में आने के बाद ही यह सीखी हूँ।

मान भी अधिक बढ़ा है। सचमुच मुझे तो लगता है कि इस शिविर में आनेवाले हजारों भाई-बहन धन्य-भागी हैं।

हरि ॐ... जय श्रीकृष्ण

– स्मिताबहन के. चौहान,
जवाहरनगर, गोत्रीरोड़, बड़ौदा।
आयु : १४ वर्ष कक्षा : ८

*

'मेरे चंचल मन में ध्यान की शक्ति आ गई है...'

पूज्य बापू के सान्निध्य में विद्यार्थी शिविर में मुझे अनोखा अनुभव हुआ। विद्यार्थी शिविर के दिन खूब आनंद में ही बीत गये। तीसरा दिन कब आया उसका भान ही न रहा। जब शाम को विदा लेनी थी तब सबके मन में प्रसन्नता थी और अलग हो जानें का दुःख भी था।

मैं अपने घर जाकर नियमित आसन, ध्यान, जप वगैरह करने लगा। धीरे धीरे भगवान में खूब तल्लीन होने लगा। मेरा मन चंचल था किन्तु मैंने अपनी इन्द्रियों को आदती बना दिया। अब मैं आँखें खराब हों ऐसे चलचित्र (फिल्म) तथा टी. वी. जैसी वस्तुओं को नहीं देखता। किसीको दुःख हो ऐसी वाणी मैं नहीं बोलता। गुरुजी गुस्से हों ऐसा एक भी कार्य नहीं करता। मैं भगवान में ऐसा तल्लीन हो जाता हूँ कि जहाँ कहीं भी बापू का शिविर हो; वहाँ अचूक जाता हूँ। मेरा शरीर अत्यन्त निरोगी एवं स्वस्थ होने लगा। शिविर का भोजन प्राप्त करने की मुझे लत लग गई है, वहाँ की छाछ तो मुझे बहुत अच्छी लग गई है।

सूरत में बापू के दिये हुए गुरुमंत्र के जप से मैं अब किसी भी कार्य में चंचलता नहीं रखता। सभी के साथ प्रेम से बात करता हूँ तथा हिलमिलकर रहता हूँ। शिविर की फिस भी बहुत कम होती है। मैं शिविर में भगवान का नाम लेने अपने मित्रों को भी ले आता हूँ। गये शिविर में मुझे पूरी स्पर्धा में तृतीय इनाम भी प्राप्त हुआ था। अब मैं अपने मित्रों के साथ मिलकर ध्यान करता हूँ। अभ्यास में प्रथम स्थान ला सकता हूँ। उसमें कीर्तन तथा परमात्मारूप पूज्य बापू के आशीर्वाद ही कारणभूत हैं। इसके बिना मैं कुछ कर ही नहीं सकता था। शिविर में आने से मेरे चंचल मन में ध्यान की शक्ति आ गई है।

अब मैं अभ्यास में प्रथम स्थान ला सकता हूँ। शिविर में आने से मेरे चंचल मन में ध्यान की शक्ति आ गई है।

शिविर में हम प्राणायाम करते हैं, इससे अपना शरीर निरोगी और स्वस्थ रहता है। शिविर के कारण से ही मैं सेवा, आज्ञापालन करने लगा हूँ। सबके साथ हिलमिलकर रहने लगा हूँ। मैं शिविरार्थियों को अपने भाई मानने लगा हूँ। शिविर संचालकों को अपने बुजुर्ग मानने लगा हूँ। बापू ने हमें कहा था कि स्वामी विवेकानंद ने यों कहा है : "जो एक लाख व्यक्तियों में से एक भी व्यक्ति ब्रह्मनिष्ठ हो, आत्म-साक्षात्कारी हो तो समस्त विश्व में परिवर्तन आ जाता है।" यह सुनकर मुझे दुनिया में महान बनकर लोगों की सेवा करने की अभिलाषा जागृत हो गई है। इससे मैं रोज लोगों की सेवा करने लग गया हूँ। माँस-मछली आदि खाना छोड़कर मैं शुद्ध शाकाहारी बन गया हूँ।

एक बार मैं बीमार हुआ तब डाक्टर ने मुझे मुर्गी का माँस खाने को कहा। तब मैंने स्पष्ट मना कर दिया था। इस तरह मैंने धर्म का चुस्ती से पालन किया। धीरे धीरे मैं अपनी तथा अन्य सोसायटियों के बालकों के बीच धर्म का प्रचार करने लग गया हूँ। पूज्य बापू का यह शिविर मेरे जीवन में अत्यन्त ही उपयोगी साबित हुआ है।

वाह ! शिविर जीवन में समय समय पर अनेक बार आते हों तो !

– शाह शैशव के.
(आयु : १० वर्ष कक्षा : ६

*

रत्न-कणिकाएँ

जप, ध्यान, सेवा, स्वाध्याय और सत्संग... ये पाँच प्रधान साधन हैं। उन्हें बराबर करते रहना चाहिए। यदि एक से चित्त हटे तो दूसरा करने लगो। इस प्रकार एक-एक करके पाँचों का अभ्यास करते रहो। यही साधक का प्रधान कर्त्तव्य है।

*

जो चित्त दृश्य जगत में आसक्त है वह परमात्म-तत्त्व का चिंतन नहीं कर सकता। जिस अवस्था में पहुँचने के लिए तुम तड़प रहे हो उसके समीप पहुँचने के पूर्व तुम्हें बहुत से कामों को और तुच्छ आकर्षणों को समाप्त करना होगा।

*

चित्त के चित्तत्व को हटाना ही होगा। इसके बिना शांति नहीं। उपासना के बिना शांति न तो हुई है और न होगी ही। ज्ञानी को भी बिना उपासना के शांति नहीं। किसी भी प्रकार से नानात्व (अनेकत्व-द्वैत) को उड़ाओ। यह नानात्व (द्वैत) ही दुःख दे रहा है।

*

नेत्र जितने चंचल होते हैं उतनी ही शक्ति नष्ट होती है। नेत्र बंद करने से उनकी शक्ति बढ़ जाती है। इसी प्रकार संयम से प्रत्येक इन्द्रिय की शक्ति बढ़ जाती है। जो ब्रह्मचर्य से रहेगा उसके शरीर की शक्ति बढ़ेगी और जो वाणी को रोकेगा उसे वाक्सिद्धि प्राप्त हो जायेगी। इसीका नाम तप है। आज कल लोग व्यर्थ गप-शप करके, नेत्रों से व्यर्थ जिस किसी वस्तु को देखकर, कानों से अनाप-शनाप बातें सुनकर अपनी शक्ति नष्ट कर देते हैं। अतः बुद्धिमान लोग सावधान रहें।

*

भगवान में तो श्रद्धा हो जाती है परन्तु गुरु में श्रद्धा होना बहुत कठिन है। लाखों मनुष्यों में कोई एक ही होगा, जो गुरु में कुछ भी दोष न देखेगा। जब तक गुरु में श्रद्धा नहीं होगी तब तक कुछ नहीं होगा।

– 'श्री उड़िया बाबा'

ले. स्वामी अखण्डानन्द सरस्वती

*

सत्ययुग में दस वर्ष तक साधन करने से मनुष्य जिस पुण्य का संग्रह करते हैं, त्रेता में उसी पुण्य को एक वर्ष में सिद्ध कर लेते हैं, द्वापर में उसीको एक मास में एवं कलियुग में उसे एक दिन में सिद्ध कर लेते हैं।

– स्क. ब्रा. से. मा. ४३ : ३,४

महाबन्ध और महावेधबन्ध

योग साधना में कुंडलिनी शक्ति जागरण का विशेष महत्त्व है। इसकी सिद्धि के लिए योगीजन कई वर्ष तपस्या करते हैं। जो साधक अपने प्राणों का नियमन करके चित्त को परमात्मा में लगाता है वह शीघ्रता से ध्येय सिद्धि प्राप्त करता है। कुंडलिनी शक्ति के जागरण के सहायक कुछ बंध हैं। उनमें महाबंध और महावेधबंध भी उपयोगी है।

महाबंध करनेवाले साधक के प्राण ऊर्ध्वगामी होते हैं, वीर्य की शुद्धि होती है, इड़ा, पिंगला और सुषुम्ना का संगम होता है और बल की वृद्धि होती है।

महाबन्ध की विधि इस प्रकार है :

महाबन्ध

बाँये पैर की एड़ी को सिवनी (गुदा और लिंग के बीच का स्थान) में जमावें। अब दायें पैर को बाँयीं जंघा के ऊपर स्थित करें। समसूत्र (टटार) बैठें। अब बाँये नथूने से पूरक करके जालंधर बंध लगायें और मलद्वार से वायु का ऊपर की ओर आकर्षण करके मूलबंध लगायें। दोनों नासापुटों के बीच जो नाड़ी है वह खुल रही है ऐसा भाव करें और यथाशक्ति कुम्भक करें। तत्पश्चात् दाँये नथूने से धीरे-धीरे रेचक करें। अब दाँये पैर की एड़ी को सिवनी में स्थापित करके बाँये पैर को दाँये पैर की जंघा पर जमायें। अब समसूत्र बैठकर दाँये नथूने से पूरक कर उपरोक्त विधि से कुम्भक कर फिर बाँये नथूने से धीरे धीरे श्वास छोड़िये। दोनों नथूनों से समान संख्या में पूरक करें।

महावेध बंध

यह बंध करने पर सुषुम्ना में प्राण का प्रवेश शीघ्र होता है और कुंडलिनी शक्ति जाग्रत होने में बड़ी सहाय मिलती है।

जिस प्रकार महाबंध में बैठे थे उसी प्रकार बैठकर कुम्भक किये हुए दोनों हाथों की हथेलियों को भूमि में दृढ़ स्थित करके हाथों के बल पर ऊपर ऊठें और नीचे गिरें। इसमें दोनों नितंबो का ताड़न करें। जब तक कुम्भक बना रहे तब तक धीरे-धीरे वह क्रिया लगातार चालू रखें। फिर धीरे-धीरे श्वास छोड़ दें। इससे शीघ्र ही सुषुम्ना का द्वार खुलता है और प्राणवायु उसमें प्रवेश करता है।

*

अद्भुत है आत्म-साक्षात्कारी पुरुषों की करुणा-कृपा !

मैंने सुना था कि जीवन में गुरु के बिना गति नहीं, गुरु के बिना कल्याण नहीं होता। गुरु की खोज करने के लिए मैं अहमदाबाद में संन्यासाश्रम, गीता मंदिर, वेद मंदिर, हरिहरानंद आश्रम, नडियाद में संतराम मंदिर, हरिद्वार में जगह जगह घूमता रहा। दिल में हो रहा था कि कोई रहबर, कोई हाथ पकड़नेवाले गुरु मिल जाएं। जब कहीं ठिकाना नही पड़ा तब परमात्मा से प्रार्थना की कि : "हे मेरे प्रभु ! अब मेरा कोई सहारा नहीं है। तू ही मुझे राह दिखा। तू ही ऐसी कोई जगह दिखा जहाँ जाने से हमारा कल्याण हो जाय।"

परमात्मा की कृपा से मेरे हृदय में स्फुरणा हुई और

मैं प्रातःस्मरणीय पूज्यपाद सद्गुरुदेव संत श्री आसारामजी महाराज के श्रीचरणों में पहुँच गया। मेरा जीवन धन्य धन्य हो गया... कल्याण हो गया।

मैं रास्ते का एक भूला भटका था राही ।
मुझे मेरी किस्मत कहाँ खींच लाई ?
न था कोई रहबर न कोई निगाहबां ।
किसीकी मुझे उस घड़ी याद आयी ॥
दुआ में उठे हाथ दिल ने पुकारा ।
ऐ मालिक! जहाँ के दुआही दुआही ॥
सुना है तू रहेमान मुश्किल कुशा है ।
सुनी गर न मेरी तो हो जग हँसाई. ॥
न दम तोड़ हिम्मत से ले काम नादाँ ।
अचानक कहीं से यह आवाज आयी ॥
मैं झिझलाकर बोला सदा देनेवाले ।
मुझे कुछ न सूझे तू कर रहेनुमाई ॥
सदा फिर यह आयी जरा गौर से सुन ।
कोई मस्त है महे नगमा सराई ॥
बड़ो उसकी जानिब वो है पीर कामिल ।
उसीके करम से हो मुश्किल कुशाई ॥
मैं बढ़ने लगा इस तरफ धीरे धीरे ।
लिये दिल में धड़कन और शौके रसोई ॥
यहाँ पहुँचने पर मैं क्या देखता हूँ ?
के साकी ने है खूब महफिल सजाई ॥
हरएक राधंता हाथ में जाम थामे ।
लिए हाथ में झूमे साकी सराई ॥
खटकने लगे जाम बँटने लगी मय ।
थी जितनी तलब जिसके हिस्से में आयी ॥
हलक से उतरते ही तूफाँ हुई वो ।
अजब कैफ़ियत एहले महफिल पे छाई ॥
किसीका झुका सजदे में सिर ।
किसीने थी अपने थी ही लौ लगाई ॥
खड़े एक तरफ़ जब यह देखा तमाशा ।
मेरे दिल में भी एक आरजु गुदगुदाई ॥
कदम चूम लूं और सज़दे उतारूँ ।
करूँ रिशक रेज़ी से दिल की सफाई ॥
तकाजा करूँ मैं फिर अपने करम का ।
नहीं कुछ मेरे पास अपनी कमाई ॥
कहूँ फिर करिमो गनी तू है साकी ।
हमें भी हकीकत से हो आशनाई ॥
यही हो रही थी मेरे दिल से बातें ।
कि साकी की जानिब से आवाज आयी ॥
बहुत दूर से चल के आये हो साधक ।
मेरी याद तुमको यहाँ खींच लाई ॥
जरा पास आओ तुम्हें प्रेम कर लूं ।
हमारी तबियत है कुछ तुम पर आयी ॥
इधर आओ बदां से 'मौला' बना दूं ।
बहुत ज़ोश पे आज रहमत है आयी ॥
मेरे जिस्म में एक बिजली सी दौड़ी ।
नजर मुझसे साथी ने जिस दिन जोड़ी ॥
उडे होश दिवानगी का था आलम ।
और एक ज्योत ही ज्योत देती दिखाई ॥
उस आलम में मुझको है बस याद इतना ।
मेरे साज़ दिल थी सदा यह थी आई ॥
ओ मौला! तेरे प्यार रहमत के सदके ।
मुझे मिल गई है खुदा की खुदाई ॥
जरा होश आया तो साकी यह बोले ।
तू पूर्ण तेरी जात जाते इलाही ॥
तू खुद आप अपनी इबादत गुज़ारे ।
यह सारा जहाँ तेरी जलवा नुमाई ॥
तलाशे खुदा की अब हालत नहीं है ।
तुझे मिल गया मकसदे-ए-इंतहाई ॥
तू हर एक को पैगाम गुरु का दिये जा ।
समझकर यह साधक कलाये-ए-इलाही ॥

हर साल जन्माष्टमी का महोत्सव पूज्यश्री के सांनिध्य में सुरत आश्रम में मनाया जाता है। मैं हर वक्त इस पर्व पर सुरत जाता था। जहाँ-जहाँ गुरुदे का कार्यक्रम होता है वहाँ गुरुदेव की कृपा मुझे खींच ले जाती है।

हर साल की नांई इस साल १९९१ की जन्माष्टमी में भी सुरत जाने के लिए उत्सुक था लेकिन मेरा स्वास्थ्य गड़बड़ हो गया। दिल में घबराहट होने लगी। कोई कहने लगा हार्टएटेक है। डाक्टर बुलाया गया। उसने कार्डियोग्राम ग्राफ लिया और तत्काल अस्पताल में भरती हो जाने की सूचना दी। उसने निदान किया कि हृदय का दौरा है।

रात को नौ दस बजे अस्पताल में गये। आई. सी. कमरे में मुझे सुला दिया। पाँव से लेकर सिर तक कई उपकरण लगा दिये गये। मेरे हृदय की गति-विधियों का समाचार देनेवाले संकेत टी. वी. स्क्रीन पर दिखाई दे रहे थे। डाक्टर लोग यह सब देख रहे थे और विचार विमर्श कर रहे थे।

रात्रि के तीन बजे होंगे। मेरे मन में आया :

"हे सदगुरु ! हे प्रभु ! हर वक्त आपका जहाँ-जहाँ सत्संग-कार्यक्रम होता है वहाँ पहुँचने का प्रयास करता हूँ और आपकी कृपा से पहुँच जाता हूँ, लेकिन इस बार जाने अनजाने मुझसे कोई गलती हो गई है जिससे आपकी कृपा से मैं वंचित रह गया हूँ। सुरत आश्रम के बजाय आज मैं अस्पताल में पड़ा हूँ। शरीर में तकलीफ है इसका कोई हर्ज नहीं है लेकिन आपके चरणों तक नहीं पहुँच पाया इसका मन में बहुत रंज है..."

ऐसा सोचते सोचते मैं रो पड़ा। गुरुदेव को प्रार्थना करने लगा : "हे मेरे प्रभु ! हे मेरे मौला ! तू कृपा कर... कृपा कर... ।" इस प्रकार मैं प्रार्थना किये जा रहा था इतने में ही सामने लगे हुए काच के ऊपर गुरुदेव का मुखारविन्द दिखाई देने लगा। उनके इर्दगिर्द श्रीराम, श्रीकृष्ण, भगवान शंकर, कई देवी-देवता और कई संत-महापुरुषों का मण्डल शोभायमान था। गुरुदेव का यह दर्शन करके मैं गद्‌गद् होकर तृप्त हो रहा था। गुरुदेव मुझसे कहने लगे :

"मौला ! डाक्टर में मुझे देख... नर्स में मुझे देख... शरीर में लगे हुए यंत्र-उपकरणों में मुझे देख... गोली में मुझे देख... केप्शूल में मुझे देख... इन्जेक्शन की सुई की नोंक में मुझे देख और तेरे आसपास जो सगे-सम्बन्धी बैठे हैं उन सबमें मुझे देख। कण-कण में मुझे देख... हर चीज में, हर वस्तु में मुझे देख... । अगर तू ऐसा देखेगा तो जहाँ तू पड़ा है वहाँ आश्रम हो जाएगा। कोई फिकर न कर।"

मेरा हृदय गुरुदेव के प्रति अहोभाव से भर आया। मैं भीतर ही भीतर अद्भुत विश्रांति का अनुभव करने लगा। सुबह में नौ बजे डाक्टर देखने आया। वह जाँच करके बोला : इनकी तबियत ठीक हो गई है। अब दूसरे कमरे में ले जाएंगे। कल छुट्टी दे देंगे।

गुरुदेव की ऐसी कृपा हुई कि तीन ही दिन में अस्पताल से घर वापस आ गया। 'कण-कण में मुझे देख, हर चीज में, हर वस्तुमें, मुझे देख...' वाला उपदेश और साकार दृश्य दोनों ने अद्‌भुत आरोग्य, आनंद और शांति का दान कर दिया। आश्चर्य है आत्मज्ञान और आश्चर्य है आत्मसाक्षात्कारी पुरुषों की करुणा-कृपा !

अखिल ब्रह्मांडमां एक तुं श्री हरि ।
जूजवे रूपे अनंत भासे ॥

नरसिंह मेहता का यह वाक्य साकार रूप में दिखानेवाले गुरुदेव को प्रणाम !

अर्जुन को भगवान श्रीकृष्ण ने विश्वरूप दिखाया और गुरुदेव आसारामजी ने मुझे दिखाया। अर्जुन युद्ध में स्वस्थ हुआ और मैं गंभीर बीमारियों से स्वस्थ हुआ। क्या अद्‌भुत है आत्मविचार का प्रभाव ! कैसी दिव्य है आत्मदृष्टि !

— वृजलाल भाटीया
कपड़े के थोक व्यापारी
न्यू क्लॉथ मारकेट, अहमदाबाद

*

प्रातःस्मरणीय पूज्यपाद संत श्री आसारामजी महाराज के प्रत्यक्ष या परोक्ष सांनिध्य में जिन साधक, भक्त भाई-बहनों को कुछ विशेष आध्यात्मिक अनुभव हुए हों वे भाग्यवंत भाई-बहन अपना वह अनुभव सचोट, सारगर्भित एवं मर्यादित शब्दों में, स्पष्ट हस्ताक्षरों में लिखकर हमें भेज सकते हैं। यथायोग्य सुविधा होने पर ये अनुभव 'ऋषि प्रसाद' में प्रकाशित किये जाएंगे।

अनुभव भेजने का पता : 'ऋषि प्रसाद' कार्यालय, श्री योग वेदान्त सेवा समिति, संत श्री आसारामजी आश्रम, साबरमती, अहमदाबाद - ३८०००५.

विदेश में भी हररोज का नित्यक्रम... प्रभात-काल में खुल्ली हवा में तन-मन के स्वास्थ्य को बढ़ानेवाली प्रातःचर्या में विचरण करते हुए पू. बापू....

दुबई के सागर-तट पर मनमोहक अदा में प्रकृति के साथ आनन्दमग्न पूज्यश्री गुरुदेव....
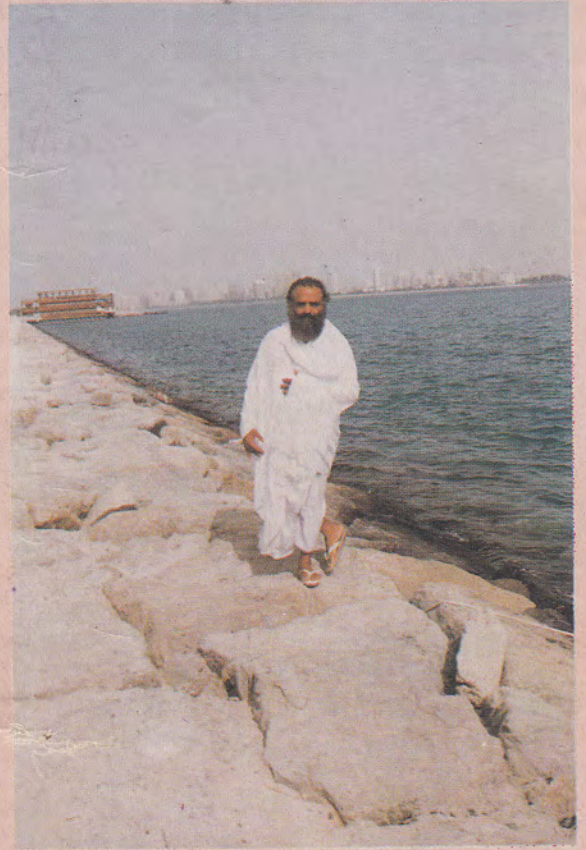
मुस्लिम देश (दुबई) में भी भक्तों की भावअभिवृद्धि हेतु भक्तों को प्रेरणा देते हुए पूज्यश्री शिवालय में...